

पेरियार के राजनीतिक चिन्तन में सामाजिक न्याय: एक आलोचनात्मक विश्लेषण

सुल्तान सिंह यादव

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
द्वाराहाट, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) E-mail: <drssyadav20@gmail.com>

सारांश

सामाजिक न्याय समकालीन राजनीतिक दर्शन की सबसे प्रमुख अवधारणाओं में से एक है, विशेषकर ऐसे समाज में जहाँ सामाजिक असमानता एवं संस्थागत भेदभाव व्यापक रूप से विद्यमान हैं। जाति व्यवस्था, पितृसत्ता, धार्मिक रूढ़िवाद तथा शिक्षा एवं सत्ता तक असमान पहुँच के इतिहास ने भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। ई०वी० रामासामी नायकर, जिन्हें पेरियार के नाम से जाना जाता है, सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख अग्रदूतों में से एक थे। उन्होंने जातिवाद के उन्मूलन, ब्राह्मणवाद के विरोध, तर्कवाद एवं समानता तथा मानवीय गरिमा पर आधारित समाज की स्थापना की वकालत की। पेरियार एक सामाजिक सुधारक थे, लेकिन उन्होंने मौजूदा संस्थाओं के भीतर सुधार करने के बजाय आत्मसम्मान, धर्मनिरपेक्षता, लैंगिक समानता एवं सामाजिक लोकतन्त्र के विचारों के आधार पर इन संस्थाओं में आमूलचूल परिवर्तन का आह्वान किया। वे केवल कानून के समक्ष नागरिकों की समानता से चिन्तित नहीं थे, बल्कि लोगों की चेतना एवं उनकी सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन को भी आवश्यक मानते थे। प्रस्तुत शोध-पत्र पेरियार के सामाजिक न्याय सम्बन्धी विचारों के दार्शनिक आधार, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रमुख विशेषताओं तथा वर्तमान सन्दर्भ में उनकी प्रासंगिकता का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है। यह मानता है कि पेरियार ने एक विशिष्ट राजनीतिक एजेण्डा प्रस्तुत किया, जिसमें सामाजिक न्याय को जाति-विरोधी राजनीति, तर्कवाद, महिला मुक्ति, शिक्षा में समानता एवं लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व के एक समन्वित कार्यक्रम के रूप में स्थापित किया गया। यह शोध-पत्र उनके विचारों, उनकी उपलब्धियों एवं सीमाओं का आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए उन्हें आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन के सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है। यह सुझाव देता है कि पेरियार द्वारा परिकल्पित आदर्श आज भी जातिगत भेदभाव एवं लैंगिक असमानता, सकारात्मक कार्यवाही तथा लोकतान्त्रिक समावेशन जैसे उन मुद्दों के लिए प्रासंगिक हैं, जो आधुनिक भारत में अभी भी पूरी तरह हल नहीं हुए हैं।

प्रमुख शब्द

[पेरियार, सामाजिक न्याय, राजनीतिक चिन्तन, तर्कवाद, समानता, आत्मसम्मान आन्दोलन, जाति, लोकतन्त्र।]

Centre For Studies of National Development, Meerut

Editorial Office : D-59, Shastri Nagar, Meerut - 250 004 (INDIA)

Ph. : 0121-2763765, +91-9997771669, +91-9412200765

3

पेरियार के राजनीतिक चिन्तन में सामाजिक न्याय: एक आलोचनात्मक विश्लेषण

1. परिचय

सामाजिक जीवन में समानता, स्वतन्त्रता एवं मानवीय गरिमा सुनिश्चित करने वाले मूल्यों के सन्दर्भ में न्याय ने सदैव राजनीतिक दर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्लेटो एवं अरस्तू सहित शास्त्रीय राजनीतिक दार्शनिकों ने न्याय को आदर्श राजनीतिक संगठन के आधार के रूप में देखा, जबकि जॉन रॉल्स एवं अमर्त्य सेन जैसे आधुनिक चिन्तकों ने निष्पक्षता, अवसर की समानता तथा संस्थागत वंचनाओं के उन्मूलन पर बल दिया है (रॉल्स, 1999; सेन, 2009)। किन्तु भारतीय सन्दर्भ में न्याय की अवधारणा एक अलग ऐतिहासिक परिस्थिति में विकसित हुई है, जो जातिवाद, सामाजिक बहिष्कार, धार्मिक भेदभाव एवं पितृसत्तात्मक मूल्यों से प्रभावित रही है। भारत में सामाजिक न्याय का संस्थानीकरण केवल संवैधानिक आदर्श तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह संरचनात्मक असमानताओं को समाप्त करने तथा अधिक समावेशी लोकतान्त्रिक समाज के निर्माण की एक व्यापक परियोजना बन गया है (ऑस्टिन, 1999)।

ई0वी0 रामासामी (1879-1973), जिन्हें पेरियार के नाम से जाना जाता है, इस बौद्धिक परम्परा में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। पेरियार आत्मसम्मान आन्दोलन के संस्थापक तथा द्रविड़ आन्दोलन के प्रमुख नेताओं के रूप में अधिक प्रसिद्ध थे तथा आधुनिक भारत के सबसे प्रभावशाली राजनीतिक चिन्तकों में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वे तर्कवादी, समतावादी, धर्मनिरपेक्षतावादी एवं आत्मसम्मान के समर्थक थे। उन्होंने जातिवाद, ब्राह्मणवाद, धार्मिक कट्टरता एवं लैंगिक भेदभाव का तीव्र विरोध किया। जहाँ सुधारवादी विचारक स्थापित व्यवस्था के भीतर परिवर्तन का प्रयास कर रहे थे, वहीं पेरियार का मानना था कि वास्तविक न्याय प्राप्त करने के लिए उन संस्थाओं एवं विचारों में बुनियादी परिवर्तन आवश्यक है, जो असमानता को बनाए रखते हैं (गीता एवं राजदुर्ई, 1998)।

पेरियार का मानना था कि जब तक सामाजिक समानता स्थापित नहीं होती, तब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता का महत्व सीमित रहेगा। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में लोकतन्त्र सम्भव नहीं हो सकता, जहाँ व्यक्ति की सामाजिक स्थिति एवं अवसर उसकी योग्यता एवं मानवीय गरिमा के बजाय उसके जन्म पर निर्भर हों। इसलिए उन्होंने जाति के उन्मूलन को लोकतान्त्रिक न्याय की पूर्वशर्त माना। उन्होंने उन सामाजिक परम्पराओं तथा सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्यों की भी आलोचना की, जो वंशानुगत विशेषाधिकार, सामाजिक बहिष्कार एवं असमानता को अधिकार एवं वैधता प्रदान करते थे। पेरियार का विश्वास था कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तर्कपूर्ण चिन्तन के माध्यम से दमनकारी सामाजिक प्रथाओं को समाप्त किया जा सकता है तथा जातिविहीन सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है (पाण्डियन, 2007)।

आत्मसम्मान भी पेरियार की राजनीतिक विचारधारा की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। उनका मानना था कि सामाजिक उत्पीड़न केवल राजनीतिक एवं आर्थिक संरचनाओं के माध्यम से ही नहीं, बल्कि उन हीनभावनाओं के माध्यम से भी जारी रहता है, जिन्हें वंचित समुदाय स्वयं स्वीकार कर लेते हैं। इसी उद्देश्य से 1925 में स्थापित आत्मसम्मान आन्दोलन ने अन्तर-जातीय विवाह, महिलाओं की शिक्षा, समान अधिकार तथा भेदभावपूर्ण धार्मिक प्रथाओं के विरोध जैसे अभियानों के माध्यम से उत्पीड़ित समुदायों की गरिमा एवं आत्मविश्वास को मजबूत करने का प्रयास किया। महिलाओं के अधिकारों, उनकी मुक्ति, आरक्षण,

सार्वभौमिक शिक्षा एवं समान प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में पेरियार के विचार इस धारणा पर आधारित थे कि सामाजिक न्याय के लिए केवल कानूनी समानता पर्याप्त नहीं है, बल्कि सकारात्मक संस्थागत उपाय भी आवश्यक हैं (हार्डग्रेव, 1965; ओमवेट, 1994)।

यद्यपि सामाजिक सुधारक एवं द्रविड़ आन्दोलन के नेता के रूप में पेरियार की भूमिका का व्यापक अध्ययन किया गया है, किन्तु एक राजनीतिक सिद्धान्तकार के रूप में उनके विचारों का अपेक्षाकृत कम विस्तार से अध्ययन हुआ है। उनके विचार सामाजिक न्याय की एक सुसंगत वैचारिकी का निर्माण करते हैं, जो समानता, तर्कवाद, जाति-विरोधी राजनीति, धर्मनिरपेक्षता एवं लोकतान्त्रिक सहभागिता पर आधारित है। पेरियार के राजनीतिक विचार वर्तमान समय में भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं, क्योंकि संविधान द्वारा समानता एवं न्याय की परिकल्पना किए जाने के बावजूद देश में जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता एवं सामाजिक बहिष्कार जैसी समस्याएँ अभी भी विद्यमान हैं।

यह शोध-पत्र पेरियार की सामाजिक न्याय की अवधारणा का दार्शनिक आधार, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रमुख घटकों तथा वर्तमान सन्दर्भ में उसकी प्रासंगिकता के आधार पर आलोचनात्मक विश्लेषण करता है। इसमें उस समानता की अवधारणा पर चर्चा की गई है, जिसकी पेरियार ने कल्पना की थी तथा जो केवल कानूनी एवं राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं थी, बल्कि सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक मूल्यों एवं व्यक्ति की चेतना तक विस्तृत थी। इस शोध का उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि पेरियार के विचार आज भी प्रासंगिक हैं तथा आधुनिक भारत में समानता, सकारात्मक कार्यवाही, धर्मनिरपेक्षता एवं लोकतान्त्रिक नागरिकता से सम्बन्धित विमर्श को निरन्तर प्रभावित करते हैं।

2. साहित्य समीक्षा एवं सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

सामाजिक न्याय राजनीतिक दर्शन की एक महत्वपूर्ण अवधारणा रही है, क्योंकि इसका सम्बन्ध समाज में समानता, स्वतन्त्रता, अधिकारों एवं अवसरों के वितरण के सिद्धान्तों से है। जहाँ शास्त्रीय राजनीतिक चिन्तन मुख्यतः नैतिक सद्गुण एवं कानूनी व्यवस्था से सम्बन्धित था, वहीं आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त में संरचनात्मक असमानताओं तथा सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में सरकार की भूमिका पर अधिक बल दिया गया है। भारतीय सन्दर्भ में सामाजिक न्याय की अवधारणा ने एक विशिष्ट स्वरूप ग्रहण किया है, क्योंकि यहाँ जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, पितृसत्ता एवं सामाजिक बहिष्कार के ऐतिहासिक अनुभव लम्बे समय से विद्यमान रहे हैं। अतः पेरियार के राजनीतिक चिन्तन को समझने के लिए भारतीय समाज की सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ राजनीतिक दर्शन की व्यापक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है।

सामाजिक न्याय का दार्शनिक आधार प्लेटो एवं अरस्तू के विचारों में भी मिलता है। प्लेटो ने अपनी कृति *द रिपब्लिक* में न्याय को व्यक्ति के राज्य के अनुरूप होने तथा प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी प्रतिभा के अनुसार अपने कार्य को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पूरा करने के रूप में देखा (प्लेटो, अनुवादित 1992)। अरस्तू ने वितरणात्मक न्याय एवं सुधारात्मक न्याय की अवधारणाओं को विकसित किया तथा यह प्रतिपादित किया कि न्याय समान व्यवहार के बजाय आनुपातिक योग्यता पर आधारित होना चाहिए (अरस्तू, अनुवादित 1984)। इन शास्त्रीय अवधारणाओं का पश्चिमी राजनीतिक चिन्तन पर गहरा प्रभाव पड़ा, लेकिन वे आधुनिक लोकतान्त्रिक समाजों में विद्यमान सामाजिक असमानताओं के संरचनात्मक पहलुओं को पर्याप्त रूप से सम्बोधित नहीं कर सकीं।

आधुनिक युग के उदारवादी राजनीतिक दर्शन ने न्याय की अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तिगत अधिकारों, कानून के समक्ष समानता एवं विधि के शासन की सुरक्षा पर बल दिया। समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त में सबसे प्रभावशाली अवधारणाओं में से एक जॉन रॉल्स का 'न्याय के रूप में निष्पक्षता' का सिद्धान्त है। रॉल्स (1999) के अनुसार न्यायपूर्ण संस्थाएँ वे हैं, जिन्हें तर्कसंगत व्यक्ति 'अज्ञान के पर्दे' के पीछे से चुनेंगे, जहाँ किसी व्यक्ति को अपनी भविष्य की सामाजिक या आर्थिक स्थिति के

बारे में जानकारी नहीं होगी। वे दो अवधारणाओं—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं वितरणात्मक न्याय—में सामंजस्य स्थापित करते हैं। उनके सिद्धान्त में समान मौलिक स्वतन्त्रताओं तथा अन्तर सिद्धान्त को विशेष महत्व दिया गया है। हालाँकि, कुछ आलोचकों का मत है कि रॉल्स की व्यवस्था जाति जैसी सामाजिक एवं सांस्कृतिक असमानताओं से निपटने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम नहीं है, क्योंकि जाति केवल आर्थिक असमानता का प्रश्न नहीं है।

दूसरी ओर, अमर्त्य सेन के क्षमता दृष्टिकोण ने संसाधनों के वितरण से ध्यान हटाकर इस बात पर केन्द्रित किया कि लोगों के पास अपने लिए मूल्यवान जीवन जीने के वास्तविक अवसर एवं क्षमताएँ कितनी हैं। सेन (2009) ने प्रतिपादित किया कि न्याय का मूल्यांकन केवल औपचारिक अधिकारों या भौतिक संसाधनों के आधार पर नहीं, बल्कि वास्तविक स्वतन्त्रताओं के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। लोगों को अपनी क्षमता एवं सम्भावनाओं को साकार करने से रोकने वाली बाधाओं को दूर करने पर उनका जोर उन समाजों के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है, जहाँ सामाजिक भेदभाव व्यापक रूप से विद्यमान है। सेन का यह दृष्टिकोण पेरियार के उस आह्वान से जुड़ा है, जिसमें वे कानूनी अधिकारों के अतिरिक्त सामाजिक बहिष्कार को बनाए रखने वाली संरचनात्मक बाधाओं को पूरी तरह समाप्त करने की आवश्यकता पर बल देते हैं, ताकि वास्तविक समानता सुनिश्चित की जा सके।

भारतीय राजनीतिक चिन्तन में सामाजिक न्याय जाति व्यवस्था की आलोचना के एक प्रमुख विषय के रूप में उभरा, जिसका नेतृत्व ज्योतिराव फुले, बी०आर० अम्बेडकर एवं पेरियार जैसे विचारकों ने किया। फुले के लिए जाति धार्मिक विचारधारा एवं समान शिक्षा के अभाव से मजबूत होने वाली संस्थागत दमन की एक व्यवस्था थी। उनका मानना था कि सार्वभौमिक शिक्षा एवं सामाजिक सुधार को वंचित समूहों की मुक्ति के लिए आवश्यक शर्त के रूप में देखा जाना चाहिए (ओमवेट, 2008)। उनके विचारों ने बाद के जाति-विरोधी आन्दोलनों के बौद्धिक आधार को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा पेरियार के राजनीतिक दर्शन को भी प्रभावित किया।

बी०आर० अम्बेडकर ने सामाजिक एवं आर्थिक समानता के साथ राजनीतिक लोकतन्त्र को जोड़कर सामाजिक न्याय की अवधारणा को विकसित किया। *जाति का विनाश* (1936/2014) में अम्बेडकर ने कहा कि संवैधानिक लोकतन्त्र तभी जीवित रह सकता है, जब उसे स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुत्व के सिद्धान्तों का समर्थन प्राप्त हो। उनका मानना था कि जाति स्वभावतः अलोकतान्त्रिक है, क्योंकि यह असमानता की एक संस्था है तथा मानवीय गरिमा का निषेध करती है। अम्बेडकर जहाँ संवैधानिक परिवर्तन एवं लोकतान्त्रिक संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक न्याय की स्थापना पर अधिक केन्द्रित थे, वहीं पेरियार ने सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए सांस्कृतिक परिवर्तन, तर्कवाद एवं धार्मिक सत्ता की अस्वीकृति जैसे अधिक व्यापक साधनों का प्रयोग किया।

हाल के वर्षों में पेरियार को केवल एक सामाजिक सुधारक के रूप में नहीं, बल्कि एक प्रमुख राजनीतिक दार्शनिक के रूप में भी देखा जाने लगा है। गीता एवं राजदुरई (1998) का तर्क है कि पेरियार ने ब्राह्मणवादी प्रभुत्व की एक व्यापक आलोचना विकसित की, जो तर्कवाद, धर्मनिरपेक्षता एवं लोकतान्त्रिक समानता पर आधारित जाति-विरोधी राजनीति थी। इसी प्रकार, एम० एस० एस० पाण्डियन (2007) ने दर्शाया है कि पेरियार की आलोचना केवल जातिगत सम्बन्धों तक सीमित नहीं थी, बल्कि भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक एवं राजनीतिक सत्ता की समग्र व्यवस्था तक विस्तृत थी। गेल ओमवेट (1994) ने पेरियार को उन जाति-विरोधी चिन्तकों की परम्परा में रखा, जिन्होंने सामाजिक न्याय के विमर्श को केवल समानता से आगे बढ़ाकर गरिमा, शिक्षा एवं लोकतान्त्रिक सहभागिता पर केन्द्रित किया।

हालाँकि हालिया शोध में पेरियार पर पर्याप्त कार्य हुआ है, फिर भी अधिकांश साहित्य या तो द्रविड़ आन्दोलन में उनके योगदान अथवा धर्म की उनकी आलोचना पर केन्द्रित है। अपेक्षाकृत कम अध्ययन ऐसे

हैं जो सामाजिक न्याय की उनकी समझ को एक व्यवस्थित राजनीतिक सिद्धान्त के रूप में देखते हैं तथा समानता के नैतिक, सामाजिक तथा संस्थागत आयामों का समग्र अध्ययन करते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य व्यापक आधुनिक सामाजिक न्याय सिद्धान्तों के सन्दर्भ में पेरियार के राजनीतिक दर्शन के विमर्श में योगदान देना है। यह तर्क प्रस्तुत करता है कि उनका दर्शन केवल सामाजिक सुधार का कार्यक्रम नहीं था, बल्कि एक मानकात्मक सिद्धान्त था, जिसमें जाति-विरोधी राजनीति, तर्कवाद, लैंगिक न्याय, शिक्षा में समानता एवं लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व को एक समतामूलक समाज की एकीकृत एवं सुसंगत परियोजना के रूप में सम्मिलित किया गया था।

अतः यह अध्ययन सामाजिक न्याय के प्रति एक बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाता है, जिसमें समानता, गरिमा, प्रतिनिधित्व एवं संरचनात्मक उत्पीड़न से मुक्ति को सम्मिलित किया गया है। इस सन्दर्भ में पेरियार के राजनीतिक दर्शन का सैद्धान्तिक परीक्षण किया जा सकता है तथा भारत में संवैधानिक समानता, सकारात्मक कार्यवाही, धर्मनिरपेक्षता एवं लोकतान्त्रिक समावेशन से सम्बन्धित चल रही बहसों के सन्दर्भ में इसकी प्रासंगिकता का आकलन किया जा सकता है।

3. पेरियार का ऐतिहासिक एवं बौद्धिक सन्दर्भ

पेरियार की सामाजिक न्याय की अवधारणा को समझने के लिए उस ऐतिहासिक एवं बौद्धिक सन्दर्भ का विश्लेषण करना आवश्यक है, जिसमें उनके राजनीतिक विचारों का विकास हुआ। उनका दर्शन औपनिवेशिक भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के एक महत्वपूर्ण दौर में विकसित हुआ, विशेषकर मद्रास प्रेसीडेंसी में, जहाँ जातिगत संरचना, सामाजिक पूर्वाग्रह तथा सरकारी नौकरियों एवं शिक्षा तक असमान पहुँच ने समाज में व्यापक ध्रुवीकरण उत्पन्न किया था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जाति-विरोधी आन्दोलनों, पश्चिमी शिक्षा के विस्तार, स्वदेशी राष्ट्रवाद एवं सामाजिक समानता की माँग का निरन्तर विकास हुआ। इन घटनाओं ने पेरियार के राजनीतिक आदर्शों एवं न्यायपूर्ण तथा समान समाज के उनके स्वप्न को गहराई से प्रभावित किया (इरशिक, 1969)।

औपनिवेशिक दक्षिण भारत में स्पष्ट एवं कठोर जातिगत विभाजन विद्यमान थे, जो व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, शिक्षा तक पहुँच, व्यवसाय एवं राजनीतिक शक्ति को निर्धारित करते थे। यद्यपि अंग्रेजी प्रशासन भारत में आधुनिक प्रशासनिक संस्थाओं एवं शैक्षिक अवसरों के लाभ लेकर आया, लेकिन ये अवसर सभी समूहों के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं थे। सामाजिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त समूह, विशेषकर ब्राह्मण, सरकारी सेवाओं, शिक्षा एवं कानून के क्षेत्र में महत्वपूर्ण पदों पर अधिक संख्या में उपस्थित थे (हार्डग्रेव, 1965)। सामाजिक एवं प्रशासनिक सत्ता के इस केन्द्रीकरण ने गैर-ब्राह्मण समुदायों में असन्तोष को जन्म दिया तथा समानता तथा प्रतिनिधित्व के लिए संगठित दबाव समूहों के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।

इस विरोध का प्रारम्भिक संगठित रूप 1916 में जस्टिस पार्टी की स्थापना के रूप में सामने आया। इस पार्टी ने प्रशासनिक सेवाओं में ब्राह्मण प्रभुत्व का विरोध किया तथा शैक्षणिक संस्थानों एवं सरकारी नौकरियों में गैर-ब्राह्मण समूहों के लिए आरक्षण की माँग की। पेरियार प्रारम्भ में जस्टिस पार्टी से जुड़े हुए नहीं थे, लेकिन सामाजिक समानता एवं प्रतिनिधित्व पर पार्टी के जोर ने उस राजनीतिक सन्दर्भ को निर्मित किया, जिसमें पेरियार की विचारधारा का विकास हुआ (इरशिक, 1969)। इसी दौरान, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रही थी। पेरियार कुछ समय के लिए कांग्रेस से जुड़े, लेकिन जातिगत भेदभाव एवं सामाजिक असमानता से निपटने में उसकी असमर्थता से वे धीरे-धीरे निराश हुए। उनका मानना था कि जब तक भारतीय समाज में सामाजिक समानता स्थापित नहीं होगी, तब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता पूर्ण नहीं हो सकती। इसी कारण उन्होंने 1925 में कांग्रेस छोड़ दी तथा सामाजिक न्याय के संघर्ष के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया (पाण्डियन, 2007)।

1925 में आत्मसम्मान आन्दोलन की स्थापना पेरियार की राजनीतिक यात्रा का एक निर्णायक चरण थी। इस आन्दोलन का उद्देश्य जाति व्यवस्था, लैंगिक भेदभाव, धार्मिक अन्धविश्वास एवं सामाजिक असमानता को समाप्त करना तथा तर्कवाद, समानता एवं मानवीय गरिमा को बढ़ावा देना था। पेरियार ने उत्पीड़न को केवल राजनीतिक संस्थाओं की वास्तविकता के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे संस्कृति एवं वंचित वर्गों में उत्पन्न हीनभावना से भी जोड़ा। इसलिए आत्मसम्मान का संघर्ष उनके सामाजिक परिवर्तन के कार्यक्रम का आधार बना। इस आन्दोलन ने ब्राह्मण पुरोहितों से मुक्त विवाह, अन्तर-जातीय विवाह, विधवा पुनर्विवाह एवं महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया तथा जाति-आधारित सामाजिक असमानताओं का विरोध किया (गीता एवं राजदुरई, 1998)।

पेरियार के चिन्तन की एक अन्य प्रमुख विशेषता उनका तर्कवाद था। उनका मानना था कि अतीत में धार्मिक सिद्धान्तों, अन्धविश्वासों एवं धर्मग्रन्थों ने जाति व्यवस्था तथा लैंगिक उत्पीड़न को उचित ठहराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसलिए उन्होंने सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तर्क एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया। वे उन अनेक समकालीन सुधारकों से भिन्न थे, जो धार्मिक सिद्धान्तों की पुनर्व्याख्या या उनमें संशोधन करने का प्रयास करते थे। इसके विपरीत, पेरियार ने धार्मिक संस्थाओं के अधिकार को ही चुनौती दी, विशेषकर तब जब वे असमानता का समर्थन करती थीं। हालाँकि, धर्म की उनकी आलोचना धर्म के अस्तित्व के विरुद्ध मात्र नहीं थी, बल्कि उनका मुख्य विरोध उस भूमिका से था, जिसे धार्मिक संस्थाएँ एवं धार्मिक विश्वास सामाजिक प्रभुत्व एवं असमानता को बनाए रखने में निभाते हैं (रामासामी, 2011)।

पेरियार के राजनीतिक विचार ज्योतिराव फुले एवं बी०आर० अम्बेडकर की व्यापक जाति-विरोधी राजनीतिक विचारधारा से भी विकसित हुए। फुले की तरह उन्होंने भी शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का सबसे प्रभावी साधन माना तथा अम्बेडकर की तरह उनका भी मानना था कि सामाजिक समानता के बिना लोकतन्त्र सम्भव नहीं है। किन्तु पेरियार तर्कवाद, आत्मसम्मान तथा न्याय की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार की धार्मिक सत्ताओं के उन्मूलन पर अपने कट्टरपंथी आग्रह के कारण विशिष्ट थे। उनके दर्शन का उद्देश्य केवल मौजूदा संस्थाओं में परिवर्तन करना नहीं था, बल्कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक एवं वैचारिक संरचना को भी परिवर्तित करना था (ओमवेट, 2008)।

इस प्रकार, पेरियार की राजनीतिक विचारधारा की ऐतिहासिक एवं बौद्धिक पृष्ठभूमि यह दर्शाती है कि सामाजिक न्याय की उनकी अवधारणा औपनिवेशिक भारत की संरचनात्मक असमानताओं के प्रति एक व्यापक एवं समावेशी प्रतिक्रिया थी। इसका निर्माण जातिगत उत्पीड़न की वास्तविकता, गैर-ब्राह्मण आन्दोलन, लोकतान्त्रिक आदर्शों तथा इस विश्वास से हुआ था कि वास्तविक न्याय केवल सामाजिक संस्थाओं, सांस्कृतिक मूल्यों एवं व्यक्तिगत चेतना में एक-साथ परिवर्तन के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। यही सन्दर्भ पेरियार के सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के मूलभूत पक्षों को समझने का आधार प्रदान करता है, जिनका विस्तृत विवेचन अगले खण्ड में किया गया है।

4. पेरियार की सामाजिक न्याय की अवधारणा

पेरियार की सामाजिक न्याय की अवधारणा उनकी राजनीतिक विचारधारा का मूल आधार है। पेरियार उन उदारवादी सिद्धान्तों के आलोचक थे, जो कानून के समक्ष समानता अथवा व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा पर मुख्य रूप से केन्द्रित थे। इसके विपरीत, उनका मानना था कि सामाजिक परिवर्तन के लिए असमानता को बढ़ावा देने वाली सामाजिक संस्थाओं का सम्पूर्ण पुनर्गठन आवश्यक है। उनके लिए सामाजिक न्याय का अर्थ केवल भौतिक संसाधनों का वितरण नहीं था, बल्कि जातिगत पदानुक्रम, लैंगिक भेदभाव, धार्मिक रूढ़िवादिता तथा सभी प्रकार के वंशानुगत विशेषाधिकारों का उन्मूलन भी था। न्याय की उनकी अवधारणा का उद्देश्य जाति, धर्म, लिंग या सामाजिक पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना सभी व्यक्तियों के लिए समान गरिमा, स्वतन्त्रता एवं अवसरों पर आधारित समाज की स्थापना करना था (गीता एवं राजदुरई, 1998)।

4.1 समानता एवं मानवीय गरिमा

समानता पेरियार के राजनीतिक दर्शन का आधार थी। उनका मानना था कि सभी मनुष्य अपनी मानवता के कारण समान हैं तथा ऐसा कोई भी समाज न्यायपूर्ण नहीं हो सकता, जिसमें व्यक्ति की सामाजिक स्थिति एवं अवसर उसके जन्म के आधार पर निर्धारित किए जाते हों। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था समानता के मूल सिद्धान्त के विपरीत है, क्योंकि इसमें विशेषाधिकार एवं वंचनाएँ योग्यता अथवा क्षमता के बजाय वंशानुगत पहचान के आधार पर निर्धारित होती हैं। इस प्रकार की व्यवस्था व्यक्ति को अपनी क्षमताओं एवं कौशलों के विकास तथा सार्वजनिक जीवन में प्रभावी भागीदारी के अवसरों से वंचित करती है (पाण्डियन, 2007)।

पेरियार ने औपचारिक समानता एवं वास्तविक अथवा सारभूत समानता के बीच अन्तर को भी रेखांकित किया। उनके अनुसार कानून के समक्ष समान दर्जा निश्चित रूप से महत्वपूर्ण था, किन्तु सदियों से भेदभाव का सामना करते आए समाज में केवल यही पर्याप्त नहीं था। सामाजिक न्याय के लिए उन संरचनात्मक बाधाओं को समाप्त करना आवश्यक था, जो वंचित समूहों को शिक्षा, रोजगार एवं राजनीतिक प्रतिनिधित्व में समान अवसर प्राप्त करने से रोकती थीं। इसलिए उन्होंने समानता को केवल संवैधानिक आदर्श न बनाकर वास्तविकता में परिवर्तित करने के लिए राज्य की सक्रिय भूमिका का समर्थन किया। उनका यह दृष्टिकोण वास्तविक समानता के उन समकालीन सिद्धान्तों के समान है, जो ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए सकारात्मक उपायों की आवश्यकता का समर्थन करते हैं (मिलर, 1999)।

पेरियार ने न्याय के एक आवश्यक अंग के रूप में मानवीय गरिमा पर भी विशेष बल दिया। उनका मानना था कि सामाजिक उत्पीड़न केवल आर्थिक अभाव तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें अपमान, सामाजिक बहिष्कार एवं आत्मसम्मान की कमी भी सम्मिलित है। इसलिए उत्पीड़ित समुदायों को सामाजिक मान्यता एवं समान नागरिकता प्रदान करके तथा भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त करके उनकी गरिमा को पुनर्स्थापित करना आवश्यक था।

4.2 जाति व्यवस्था की आलोचना

पेरियार ने जाति व्यवस्था को भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा माना। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था लोकतन्त्र एवं समानता के सिद्धान्तों के पूर्णतः विपरीत है। जहाँ उन्नीसवीं शताब्दी के अनेक सुधारवादी विचारक जाति व्यवस्था में सुधार करना चाहते थे, वहीं पेरियार का तर्क था कि जाति केवल एक सामाजिक पहचान नहीं है, बल्कि उत्पीड़न की एक संस्थागत व्यवस्था है, जो शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक शक्ति एवं धार्मिक क्षेत्रों तक पहुँच को निर्धारित करती है। यह वंशानुगत विशेषाधिकार प्रदान करके तथा बड़ी संख्या में लोगों को समान अवसरों से वंचित करके सामाजिक असमानता को बनाए रखती है (इरशिक, 1969)।

जाति की आलोचना में पेरियार का एक प्रमुख तर्क यह था कि जाति व्यवस्था को धार्मिक विचारधारा के माध्यम से बनाए रखा गया है। उनका कहना था कि ऐतिहासिक रूप से धर्मग्रन्थों, धार्मिक अनुष्ठानों एवं पुरोहित वर्ग के अधिकार का उपयोग सामाजिक पदानुक्रम तथा कुछ समुदायों की श्रेष्ठता को उचित ठहराने के लिए किया गया। इसलिए जाति का उन्मूलन केवल कानून के माध्यम से सम्भव नहीं था, बल्कि इसके लिए भेदभाव को वैचारिक आधार प्रदान करने वाली विचारधारा को भी अस्वीकार करना आवश्यक था। इस कट्टरपंथी दृष्टिकोण ने पेरियार को अपने समय के उन अन्य सुधारकों से अलग किया, जो धार्मिक परम्पराओं के मूल अधिकार को चुनौती दिए बिना उनकी पुनर्व्याख्या करने का प्रयास कर रहे थे (ओमवेट, 1994)।

पेरियार ने लोकतान्त्रिक नागरिकता पर जाति के प्रभाव को भी रेखांकित किया। उनके अनुसार जाति व्यवस्था समाज को जन्म के आधार पर विभिन्न श्रेणियों एवं समूहों में विभाजित करके एक पदानुक्रमित सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करती है। इस प्रकार के विभाजन सार्वजनिक जीवन में बन्धुत्व, सामाजिक एकजुटता एवं समानता की भावना के विकास को असम्भव बना देते हैं। इसलिए उन्होंने लोकतान्त्रिक एवं समतामूलक समाज की नींव रखने के लिए जाति के पूर्ण उन्मूलन को एक अनिवार्य पूर्वशर्त माना।

4.3 तर्कवाद एवं आत्मसम्मान

पेरियार की राजनीतिक विचारधारा के सबसे मौलिक तत्वों में से एक तर्कवाद की अवधारणा थी। उनका मानना था कि सामाजिक एवं सार्वजनिक संस्थाओं सहित प्रत्येक व्यवस्था को तर्क एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए। उनके विचार में बिना किसी प्रश्न या आलोचना के स्वीकार किए गए धार्मिक विश्वासों, परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों ने दमनकारी सामाजिक व्यवस्थाओं को बनाए रखने में सहायता की। इसलिए तर्कसंगत चिन्तन उनके लिए सामाजिक मुक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन था, जिसके माध्यम से समाज में गहराई से स्थापित पूर्वाग्रहों एवं भेदभावपूर्ण परम्पराओं का विरोध किया जा सकता था (रामासामी, 2011)।

पेरियार का तर्कवाद केवल नास्तिकता तक सीमित नहीं था। इसके बजाय यह आलोचनात्मक चिन्तन, संशयवाद एवं स्वतन्त्र विचार की एक व्यापक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता था। उनका तर्क था कि प्रत्येक संस्था का मूल्यांकन उसकी धार्मिक वैधता के आधार पर नहीं, बल्कि मानव कल्याण एवं समानता में उसके योगदान के आधार पर किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से पेरियार का दर्शन एक ओर प्रबोधनकालीन आदर्शों से प्रभावित था, तो दूसरी ओर भारतीय समाज की वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों से भी गहराई से जुड़ा हुआ था।

आत्मसम्मान की अवधारणा तर्कवाद के साथ गहराई से जुड़ी हुई थी। पेरियार का तर्क था कि सदियों के उत्पीड़न के कारण वंचित समुदायों में हीनता की भावना विकसित हो गई थी। इसलिए मनोवैज्ञानिक मुक्ति भी सामाजिक न्याय की उतनी ही महत्वपूर्ण शर्त थी, जितनी कि कानूनी एवं संस्थागत परिवर्तन। आत्मसम्मान आन्दोलन के माध्यम से उन्होंने लोगों को जातिगत विभाजनों का विरोध करने, भेदभावपूर्ण परम्पराओं को चुनौती देने तथा अपने आत्मसम्मान तथा गरिमा के प्रति विश्वास विकसित करने का सन्देश दिया। इस प्रकार आत्मसम्मान समानता प्राप्त करने का एक नैतिक लक्ष्य एवं राजनीतिक कार्यवाही का महत्वपूर्ण साधन बन गया (गीता एवं राजदुरई, 1998)।

4.4 महिला अधिकार एवं लैंगिक न्याय

पेरियार सामाजिक न्याय के अभिन्न अंग के रूप में लैंगिक समानता के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि महिलाओं को सामाजिक रीति-रिवाजों, शिक्षा तक असमान पहुँच, सम्पत्ति के अधिकारों से वंचित किए जाने, बाल विवाह तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्धों के माध्यम से व्यवस्थित भेदभाव का सामना करना पड़ता है। इसलिए उनके अनुसार कोई भी समाज तब तक न्यायपूर्ण नहीं हो सकता, जब तक महिलाओं को पुरुषों की तुलना में द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में देखा तथा व्यवहार किया जाता है (ओमवेट, 1994)।

अपने समय के सन्दर्भ में पेरियार महिला मुक्ति के अत्यन्त प्रगतिशील समर्थक थे। उन्होंने महिला शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, उत्तराधिकार में समान अधिकार, प्रजनन सम्बन्धी निर्णयों में महिलाओं की स्वतन्त्रता तथा विवाह में स्वतन्त्र चयन के अधिकार का समर्थन किया। उन्होंने दहेज प्रथा, बाल विवाह एवं उन धार्मिक परम्पराओं की भी आलोचना की, जो महिलाओं की हीनता की धारणा को और अधिक मजबूत करती थीं। इन सुधारों के माध्यम से पेरियार लैंगिक समानता को लोकतान्त्रिक नागरिकता के एक अनिवार्य घटक के रूप में स्थापित करना चाहते थे। महिला अधिकारों पर उनके विचार आज भी भारत में नारीवाद, लैंगिक न्याय एवं सामाजिक सुधार से सम्बन्धित विमर्श को प्रभावित करते हैं।

4.5 शिक्षा, आरक्षण एवं लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व

शिक्षा पेरियार की सामाजिक परिवर्तन सम्बन्धी विचारधारा का एक प्रमुख पक्ष थी। उनका मानना था कि अज्ञानता, अन्धविश्वास एवं सामाजिक असमानता को समाप्त करने का सबसे प्रभावी माध्यम शिक्षा है। उनके अनुसार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच यह सुनिश्चित करती है कि ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदाय अपनी क्षमताओं का विकास कर सकें तथा राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन में पूर्ण भागीदारी प्राप्त कर सकें।

पेरियार शिक्षा एवं सार्वजनिक सेवाओं में आरक्षण तथा सकारात्मक कार्यवाही के भी समर्थक थे। उनका मानना था कि सदियों से हाशिए पर रखे गए समुदायों की आवाज को केवल औपचारिक समानता के माध्यम से पर्याप्त रूप से स्थापित एवं मजबूत नहीं किया जा सकता। इसलिए राज्य की संस्थाओं, शैक्षणिक संस्थानों एवं सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए राज्य का सकारात्मक हस्तक्षेप आवश्यक है। पेरियार के लिए आरक्षण किसी प्रकार की रियायत नहीं था, बल्कि वास्तविक समानता स्थापित करने एवं अतीत के अन्यायों को दूर करने का एक साधन था (जाफ्रेलो, 2003)।

लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व पर उनका जोर समावेशी शासन के उनके व्यापक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति था। पेरियार का मानना था कि समाज के नाम पर कार्य करने वाली संस्थाओं में समाज की सामाजिक विविधता का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। यदि वंचित समुदायों का प्रतिनिधित्व नहीं होता है, तो लोकतन्त्र केवल असमानताओं को पुनः उत्पन्न करने वाला राजनीतिक आवरण बनकर रह जाएगा।

पेरियार की सामाजिक न्याय की दृष्टि एक व्यापक एवं समग्र दृष्टिकोण थी, जिसमें समानता, तर्कवाद, जाति-विरोधी राजनीति, लैंगिक न्याय, शिक्षा एवं लोकतन्त्र को सम्मिलित किया गया था। उनके राजनीतिक दर्शन ने असमानता के संस्थागत आधारों को चुनौती दी तथा मानवीय गरिमा, वास्तविक समानता तथा सामाजिक मुक्ति पर आधारित लोकतन्त्र की एक वैकल्पिक अवधारणा प्रस्तुत की। अपने ऐतिहासिक उद्भव के बावजूद, उनकी अवधारणाएँ वर्तमान भारत में सामाजिक न्याय, संवैधानिक समानता एवं लोकतान्त्रिक समावेशन से सम्बन्धित विमर्श में अत्यन्त प्रासंगिक बनी हुई हैं।

5. आलोचनात्मक मूल्यांकन एवं समकालीन प्रासंगिकता

5.1 आलोचनात्मक मूल्यांकन

पेरियार का राजनीतिक दर्शन आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन में सामाजिक न्याय की सबसे अधिक क्रान्तिकारी एवं परिवर्तनकारी अवधारणाओं में से एक है। उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह पहचानना था कि सामाजिक अन्याय केवल व्यक्तियों के पूर्वाग्रहों अथवा असमान कानूनों की समस्या नहीं है, बल्कि यह संस्थागत जाति व्यवस्था, पितृसत्ता एवं धार्मिक रूढ़िवादिता से उत्पन्न होने वाली एक संरचनात्मक समस्या है। पेरियार ने 'न्याय' की अवधारणा को संवैधानिक अधिकारों एवं आर्थिक पुनर्वितरण से आगे बढ़ाकर गरिमा, आत्मसम्मान एवं सामाजिक मुक्ति तक विस्तृत किया (गीता एवं राजदुरई, 1998)। लोकतन्त्र के अस्तित्व एवं सफलता के लिए सामाजिक समानता को आवश्यक मानना भारतीय राजनीतिक चिन्तन में उनका एक महत्वपूर्ण योगदान है।

जाति का संरचनात्मक विश्लेषण पेरियार के चिन्तन की प्रमुख शक्तियों में से एक है। पेरियार ने जाति को सामाजिक संरचना में अन्तर्निहित एक ऐसी सत्ता-व्यवस्था के रूप में देखा, जो लोगों की शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक शक्ति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा तक पहुँच को प्रभावित करती है तथा जिसे केवल क्रमिक सुधारों के माध्यम से आसानी से परिवर्तित नहीं किया जा सकता। उनका विश्लेषण उन समाजशास्त्रीय एवं राजनीतिक अध्ययनों से पहले का था, जिन्होंने जाति को केवल सांस्कृतिक परम्परा के रूप में नहीं, बल्कि संरचनात्मक असमानता की व्यवस्था के रूप में देखा (पाण्डेयन, 2007)। यह दृष्टिकोण आज भी सकारात्मक कार्यवाही, सामाजिक समावेशन एवं संवैधानिक समानता से सम्बन्धित चर्चाओं में प्रासंगिक है।

तर्कवाद के प्रति पेरियार का समर्थन भी लोकतन्त्र के सिद्धान्त में उनका एक महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने बताया कि आलोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं स्वतन्त्र जिज्ञासा सामाजिक प्रगति तथा विरासत में प्राप्त पूर्वाग्रहों का सामना करने के लिए आवश्यक तत्त्व हैं। उन्होंने सत्ता एवं प्राधिकार की निरंकुशता को चुनौती देते हुए लोगों को धार्मिक प्राधिकार के आधार पर नहीं, बल्कि समानता एवं मानव कल्याण के सिद्धान्तों के आधार पर परम्पराओं पर प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित किया। तर्क एवं विवेक पर उनका यह जोर आज के उन समाजों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहाँ पहचान की राजनीति, गलत सूचनाएँ एवं सामाजिक पूर्वाग्रह अभी भी सार्वजनिक विमर्श को गहराई से प्रभावित करते हैं (रामासामी, 2011)।

पेरियार के राजनीतिक चिन्तन में लैंगिक न्याय के प्रति उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण भी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। ऐसे समय में जब पितृसत्ता सामाजिक शक्ति की प्रमुख संरचना थी, उन्होंने इसका विरोध किया तथा महिला शिक्षा, समान सम्पत्ति अधिकार, विधवा पुनर्विवाह, प्रजनन स्वतन्त्रता एवं विवाह में समानता का समर्थन किया। सामाजिक असमानताओं की प्रकृति एवं उनके परस्पर सम्बन्धों के बारे में उनकी समझ बाद में विकसित हुए नारीवादी विश्लेषणों से काफी पहले की थी (ओमवेट, 1994)। इसलिए महिलाओं के अधिकार एवं लोकतान्त्रिक नागरिकता से सम्बन्धित समकालीन विमर्श में पेरियार के लेखन की प्रासंगिकता बनी हुई है।

हालाँकि, पेरियार के दर्शन एवं योगदान की आलोचना भी की गई है। कुछ विद्वानों के अनुसार, ब्राह्मणवाद की उनकी आलोचना कई बार अत्यधिक आक्रामक एवं विवादात्मक हो जाती है तथा उनके लेखन में दमनकारी सामाजिक संरचना की आलोचना तथा किसी विशिष्ट समुदाय की आलोचना के बीच की सीमा अस्पष्ट हो जाती है। विरासत में प्राप्त विशेषाधिकारों की व्यवस्था को समाप्त करने के अपने व्यापक उद्देश्य में उनके कुछ भाषणों में प्रयुक्त भाषा को बहुलतावादी लोकतान्त्रिक समाज में सम्वाद की सम्भावनाओं को सीमित करने वाला भी माना गया है (जाफ्रेलो, 2003)।

एक अन्य आलोचना यह है कि पेरियार ने आर्थिक असमानता के प्रश्न पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया। उन्होंने जाति एवं आर्थिक शोषण के बीच सम्बन्ध को स्वीकार किया, लेकिन उनका लेखन मुख्यतः सामाजिक पदानुक्रम, सांस्कृतिक प्रभुत्व एवं वैचारिक उत्पीड़न पर केन्द्रित रहा। समाजवादी अथवा मार्क्सवादी विचारधारा की तुलना में वर्ग सम्बन्धों, श्रम के अधिकार एवं आर्थिक पुनर्वितरण के सम्बन्ध में उनका राजनीतिक दर्शन अपेक्षाकृत कम विकसित दिखाई देता है। फिर भी, इससे जाति को एक विशिष्ट संरचनात्मक असमानता के रूप में समझने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका कम नहीं होती, जिसे केवल आर्थिक भाषा के माध्यम से पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

5.2 समकालीन प्रासंगिकता

पेरियार के सामाजिक न्याय सम्बन्धी विचार आज के भारत में भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं। यद्यपि भारतीय संविधान समानता को मान्यता देता है, भेदभाव पर रोक लगाता है और सकारात्मक कार्यवाही का प्रावधान करता है, फिर भी जाति-आधारित बहिष्कार, लैंगिक असमानता तथा शिक्षा एवं रोजगार तक असमान पहुँच जैसी समस्याएँ अभी भी मौजूद हैं। जातिगत भेदभाव की घटनाएँ, आरक्षण से सम्बन्धित बहसों, सामाजिक प्रतिनिधित्व की माँग तथा शिक्षा एवं आर्थिक अवसरों में बनी असमानताएँ यह दर्शाती हैं कि पेरियार द्वारा उठाए गए अनेक प्रश्न आज भी पूरी तरह हल नहीं हुए हैं।

पेरियार आरक्षण एवं लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व के प्रबल समर्थक थे तथा उनके विचार आज भी सार्वजनिक नीति तथा संवैधानिक विमर्श को प्रभावित करते हैं। किसी समुदाय के ऐतिहासिक रूप से वंचित होने की स्थिति को दूर करने के लिए वास्तविक समानता सुनिश्चित करने हेतु राज्य की सकारात्मक भूमिका आवश्यक है, जो आरक्षण नीतियों में दिखाई देती है। इसी प्रकार, सार्वभौमिक शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तर्कपूर्ण चिन्तन के सम्बन्ध में पेरियार के विचार समानता एवं मानवीय गरिमा पर आधारित लोकतान्त्रिक समाज के निर्माण के संवैधानिक उद्देश्य से भी जुड़े हुए हैं।

पेरियार के विचारों ने धर्मनिरपेक्षता, महिला अधिकारों एवं सामाजिक समावेशन से सम्बन्धित समकालीन बहसों को भी प्रभावित किया है। सामाजिक संस्थाओं का मूल्यांकन तर्क एवं मानव कल्याण के आधार पर करने का उनका आग्रह आज लैंगिक भेदभाव, जाति-आधारित हिंसा, धार्मिक असहिष्णुता एवं सामाजिक बहिष्कार जैसे मुद्दों पर विचार करने के लिए उपयोगी आधार प्रदान करता है। इस दृष्टि से पेरियार का दर्शन केवल औपनिवेशिक दक्षिण भारत के ऐतिहासिक सन्दर्भ तक सीमित नहीं है, बल्कि इसे लोकतान्त्रिक नागरिकता, संवैधानिक नैतिकता एवं लोकतान्त्रिक शासन की व्यापक बहस के एक महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक समय में पेरियार के अध्ययन का महत्व एक ऐसे प्रमुख चिन्तक के रूप में बढ़ रहा है, जिन्होंने भारत में आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गरिमा, समानता एवं संरचनात्मक परिवर्तन पर उनका जोर भारतीय संविधान में निहित न्याय की दृष्टि से सामंजस्य रखता है, जो संविधान की प्रस्तावना एवं मौलिक अधिकारों में अभिव्यक्त होती है। पेरियार की सामाजिक न्याय की अवधारणा समग्र थी, जिसमें तर्कवाद, जाति-विरोधी विचारधारा, लैंगिक न्याय एवं लोकतान्त्रिक सहभागिता को सम्मिलित किया गया था। ये विचार आज भी अकादमिक अध्ययन एवं सार्वजनिक नीति के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

6. निष्कर्ष

पेरियार के राजनीतिक आदर्श आधुनिक भारत में सामाजिक न्याय की सबसे विस्तृत एवं प्रभावशाली अभिव्यक्तियों में से एक हैं। उन्होंने सामाजिक असमानता तथा जाति व्यवस्था, धार्मिक कट्टरता, पितृसत्ता एवं वंशानुगत विशेषाधिकारों के पारम्परिक स्रोतों को चुनौती दी तथा समानता, तर्कवाद, आत्मसम्मान तथा मानवीय गरिमा पर आधारित एक नई सामाजिक दृष्टि प्रस्तुत की। पेरियार ने न्याय को केवल कानून के समक्ष समानता अथवा संवैधानिक अधिकारों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि वास्तविक लोकतन्त्र के निर्माण के लिए सामाजिक संस्थाओं, सांस्कृतिक मूल्यों एवं व्यक्तिगत चेतना में परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पेरियार की सामाजिक न्याय की अवधारणा केवल जातिगत भेदभाव के उन्मूलन तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसमें महिलाओं की मुक्ति, शिक्षा में समानता, सकारात्मक कार्यवाही, लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व एवं धर्मनिरपेक्षता भी सम्मिलित थे। उनका राजनीतिक दर्शन स्वतन्त्रता, समानता, गरिमा एवं सामाजिक समावेशन जैसे प्रमुख मूल्यों को एक समतामूलक लोकतान्त्रिक समाज की एकीकृत दृष्टि में जोड़ने वाला एक मानकात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। उनके कुछ भाषणों एवं राजनीतिक रणनीतियों को लेकर आलोचनाएँ एवं विवाद अवश्य हैं, लेकिन संरचनात्मक समानता के संघर्ष में उनके समग्र प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता।

आधुनिक भारत में पेरियार के विचार आज भी प्रासंगिक हैं, जहाँ जाति सम्बन्धी प्रश्न, महिलाओं से जुड़े मुद्दे, सामाजिक बहिष्कार एवं अवसरों की असमानता संवैधानिक लोकतन्त्र के समक्ष चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं। सामाजिक समानता एवं मानवीय गरिमा से अभिन्न रूप से जुड़े लोकतन्त्र की उनकी दृष्टि अधिक न्यायपूर्ण एवं समावेशी समाज के निर्माण की दिशा में कार्य करने वाले विद्वानों, नीति-निर्माताओं एवं सामाजिक आन्दोलनों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है। अतः पेरियार को केवल एक सामाजिक सुधारक एवं क्षेत्रीय नेता के रूप में नहीं, बल्कि उन महान चिन्तकों में से एक के रूप में देखा जा सकता है, जिनके सामाजिक न्याय सम्बन्धी आदर्श आज भी लोकतन्त्र के अध्ययन तथा व्यवहार में प्रासंगिक बने हुए हैं।

सन्दर्भ-सूची

- Aloysius, G., *Periyar on Category-wise Rights*, New Delhi: Critical Quest, 2016.
-, *Periyar and Modernity*, New Delhi: Critical Quest, 2019.
- Ambedkar, B. R., *Annihilation of Caste*, New Delhi: Navayana, 2014. (Original work published 1936)
- Aristotle, *The Complete Works of Aristotle*, Volume 1: The Revised Oxford Translation (J. Barnes, Ed.), Princeton, N.J.: Princeton University Press, 1984.
- Austin, G., *Working a Democratic Constitution: The Indian Experience*, New Delhi: Oxford University Press, 1999.

- Geetha, V., & Rajadurai, S. V., *Towards a non-Brahmin millennium: From Iyothee Thass to Periyar*, Calcutta: Samya, 1998.
- Hardgrave, R. L. Jr., *The Dravidian Movement*, Bombay: Popular Prakashan, 1965.
- Irschick, E. F., *Politics and Social Conflict in South India: The Non-Brahman Movement and Tamil Separatism, 1916-1929*, California: University of California Press, 1969.
- Jaffrelot, C., *India's Silent Revolution: The Rise of the Lower Castes in North India*, New Delhi: Permanent Black, 2003.
- Miller, D., *Principles of Social Justice*, Cambridge, Massachusetts: Harvard University Press, 1999.
- Omvedt, G., *Dalits and the Democratic Revolution: Dr. Ambedkar and the Dalit Movement in Colonial India*, New Delhi: Sage Publications, 1994.
-, *Seeking Begumpura: The Social Vision of Anticaste Intellectuals*, New Delhi: Navayana, 2008.
- Pandian, M. S. S., *Brahmin and Non-Brahmin Genealogies of the Tamil Political Present*, New Delhi: Permanent Black, 2007.
- Plato, *Republic* (G. M. A. Grube, Trans.; C. D. C. Reeve, Rev.), Indianapolis: Hackett Publishing, 1992.
- Ramasamy, E. V., *Why were Women enslaved?*, Chennai (formerly Madras): The Periyar Self-Respect Propaganda Institution, 2011.
- Rawls, J., *A Theory of Justice* (Rev. ed.), Cambridge, Massachusetts: Harvard University Press, 1999.
- Sen, A., *The Idea of Justice*, London: Allen Lane, 2009. ★